ॐ

॥ श्री परमात्मने नमः ॥

तारण त्रिवेणी

(भाग - 2)

श्री तारणस्वामी द्वारा रचित श्रीज्ञानसमुच्चयसार की चयनित गाथाओं पर अध्यात्मयुगप्रवर्तक पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के शब्दशः प्रवचन

भाद्र कृष्ण ११, सोमवार, दिनांक - २५-०९-१९६२
गाथा-२५, २७, ८०, ८४, ३५०, प्रवचन-१

ज्ञानसमुच्चयसार नाम का ग्रन्थ तारणस्वामी ने बनाया है। ज्ञानसमुच्चय का अर्थ क्या है? ज्ञान का समूह। सम्यग्ज्ञान का जितना समूह है, उसमें सर्वज्ञ परमात्मा जिनेन्द्रदेव ने साररूप क्या कहा? समझ में आया? भगवान की दिव्यध्वनि में आया और परम्परा सन्तों ने आत्मा के साररूप सम्यग्ज्ञान सबका सार क्या कहा, वह इन्होंने अध्यात्मभाषा में कथन किया है। २५ गाथा से लेना है।

सम्यग्दर्शन की जरूरत—आवश्यकता। सम्यग्दर्शन क्या चीज़ है, यह अनन्त काल में एक सेकेण्डमात्र भी जाना नहीं। क्या चीज़ है? और कैसे प्रगट होता है? ऐसी भी इसकी पहिचान की नहीं। तो उस वस्तु की क्या आवश्यकता है और उस वस्तु से मोक्षमार्ग की शुरुआत होती है। इसके अतिरिक्त मोक्षमार्ग की शुरुआत नहीं होती। उसमें तो मांगलिक किया है पहले। यहाँ अपने २५ से। यह सम्यग्दर्शन की व्याख्या ही मांगलिक है। '**जिन**' पहला शब्द ही पड़ा है, देखो!

जिन उक्तं सुद्ध संमत्तं, सार्धं भव्यलोकयं।
तस्याति गुणनिरूपं च, सुध सार्धं बुधै जनै॥२५॥

यह इतने शब्द पड़े हैं। पढ़ा भी नहीं होगा कभी। शोभालालजी! घर में रखना।

मुमुक्षु : पूजा करते हैं न।

पूज्य गुरुदेवश्री : पूजा करते हैं, परन्तु क्या भाव है, यह समझे बिना? सेठ! पूजा करते हैं। लक्ष्मी को प्रयोग करते हैं या नहीं खाने-पीने में? तो इस पुस्तक की मात्र पूजा करना?

कहते हैं कि वस्तु का स्वरूप। यह कहते हैं, देखो! पहला शब्द '**जिन**' मांगलिक पड़ा है। '**जिन उक्तं सुद्ध संमत्तं,**' **जिनेन्द्र भगवान द्वारा कथन किया हुआ...** लो! अकेले हम ही कहते हैं, ऐसा नहीं। यह तो जिनेन्द्र भगवान त्रिलोकनाथ देवाधिदेव परमात्मा अनन्त तीर्थंकर हुए, उनका '**उक्तं**'—उनका कहा हुआ हम सम्यग्दर्शन का स्वरूप कहते हैं। समझ में आया? ऐसी व्याख्या जैनदर्शन के सिवाय कहीं है नहीं। सेठ! तो उसके साथ किसी का मिलान करना, यह बात यथार्थ नहीं है। उसमें प्रमुख है तो उसे ही कहना पड़े न! समझ में आया? क्यों पण्डितजी!

'**जिन उक्तं**' शब्द। सहज ही यह श्लोक लेने की इच्छा हुई और पहला शब्द ही '**जिन**' पड़ा है। वीतराग सर्वज्ञ परमात्मा जिन्हें एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में सर्वज्ञपद अन्तर में से प्रगट हुआ ऐसे जिन। जिन अर्थात् अज्ञान और राग-द्वेष को जीतकर, वीतराग विज्ञानघन की पर्याय जिन्होंने प्रगट की है, उन्हें जिन कहा जाता है। वे जिन तो द्रव्य में भी जिनपना था, गुण में भी था, उसे पर्याय में प्रगट किया, ऐसी बात को जिन कहते हैं। ऐसी बात सर्वज्ञ परमात्मा जिन के अतिरिक्त अन्यत्र कहीं मिलान करो तो हो सकती नहीं। पण्डितजी! बहुत के साथ मिलाया है न इसमें?

'**जिन उक्तं**' जो अपना पद अन्तर में जिनपद ही आत्मा है। 'जिन सो ही है आत्मा, अन्य सो ही है कर्म, यही वचन से समझ ले जिन प्रवचन का मर्म।' समझ में आया? शोभालालजी! यह रिकॉर्डिंग होती है पश्चात् वहाँ घर में सागर में बराबर सुनना। 'जिन सो ही है आत्मा' यह आत्मा ही जिन है। जिन हो गये वे सर्वज्ञ परमात्मा हो गये, परन्तु जिन यह आत्मा है, अपना स्वरूप। अन्तर में एक समय की पर्याय का लक्ष्य छोड़ दो तो द्रव्य और स्वभाव जिन अर्थात् वीतराग विज्ञानघन स्वभाव अपना है।

वीतराग विज्ञानघन स्वभाव है। जिसने पर्याय में—अवस्था में जिनपना प्रगट किया है, उसे हम कहते हैं कि मांगलिक के लिये उनका स्मरण करके यह उन्होंने कहा, जैसा कहा, उसमें जैन परमेश्वर की भक्ति और बहुमान आ जाता है। समझ में आया?

भगवान कहते हैं। उसमें यह मांगलिक आ गया। 'अरिहंता मंगलं' आता है या नहीं? चार मांगलिक। सिद्ध मंगलं, साहु मंगलं... तो यह पहले कहते हैं। जिन, ऐसा शब्द पड़ा है। उसमें ही मांगलिक आ गया। अरिहन्त पद जिसे मांगलिकरूप कहते हैं, उस पद में वाणी द्वारा कहा। सिद्ध है, उन्हें वाणी नहीं, तो उन्होंने कहा नहीं। यहाँ तो '**जिन उक्तं**' सर्वज्ञपद जो सयोगी केवलज्ञानी हैं और वाणी निकलने की योग्यता है, उन्हें पहले याद किया है। क्यों याद किया? कि सिद्ध का उपकार पहले नहीं। सिद्ध को वाणी नहीं। और सर्वज्ञजिन को वाणी है। तो उपकार समझने के लिये पहले अरिहन्त का बहुमान आता है। क्योंकि वे उपकारी हैं। ... तो पहले '**जिन उक्तं**' (लिया है)। उनकी वाणी निकलती है, ऐसे जिन वीतराग का मैं आदर करके, याद करके, स्मरण करके यह श्लोक बनाता हूँ। समझ में आया?

'**जिन उक्तं**' तो कोई कहे कि वीतरागपद तो आत्मा की पर्याय में प्राप्त हो जाये, परन्तु उन्हें वाणी नहीं होती। तो ऐसा होता ही नहीं। कोई मुनि हो केवलज्ञानी कि जिन्हें वाणी न हो, परन्तु जिनका परोपकार हुआ, उनको वाणी न हो तो वे परोपकार में निमित्त नहीं कहते जाते। '**जिन उक्तं**' जो वीतरागपर्याय जिन्हें प्रगट हुई, उन्होंने कहा हुआ, उनकी वाणी में आया हुआ। यह भी व्यवहार है। '**उक्तं**'—कहा। वाणी कहीं आत्मा की नहीं, परन्तु कथन की शैली (क्या करे?) '**जिन उक्तं**'। समझ में आया? पण्डितजी! वीतराग है, वे वाणी बोलते हैं? वाणी उनकी है ही नहीं, वाणी उनकी है ही नहीं। वाणी जड़ की है। आत्मा अपना वीतराग विज्ञानघन पर्याय में अनुभव करता है परन्तु निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध करके वाणी निकलती है। अपनी जड़शक्ति की पर्याय से, उसमें भगवान का योग और ज्ञान निमित्त है। तो वह निमित्त-नैमित्तिकसम्बन्ध से कहते हुए कहते हैं कि '**जिन उक्तं**' निश्चय कहो या जिन से वाणी निकली है, वह तो निश्चय में आता नहीं। समझ में आया? तो व्यवहार भी सिद्ध किया। समझ में आया? वीतराग सर्वज्ञ परमात्मा ने कहा। तो कहा वह निमित्त से व्यवहार आया। व्यवहार आ गया।

व्यवहार है अवश्य, परन्तु वह वास्तव में अन्तर दृष्टि प्रयोजन के ऊपर (है तो) उसका आश्रय लेने में अप्रयोजनभूत है। यह अभी दूसरी गाथा में कहेंगे—२६ में कहेंगे।

जिनेन्द्र भगवान द्वारा कथन किया हुआ... 'सुद्ध संमत्तं' कैसा है समकित? **निर्दोष शुद्ध सम्यग्दर्शन...** शुद्ध समकित क्यों कहा? कि देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा करना, उस राग को व्यवहार समकित कहते हैं, परन्तु वह अशुद्ध समकित है। समझ में आया? सच्चे देव, सच्चे गुरु, सच्चे शास्त्र, वे परद्रव्य हैं तो उनकी श्रद्धा और नौ तत्त्व के भेदवाली श्रद्धा होती है, वह विकल्प है, वह राग है तो राग को समकित कहना, वह अशुद्ध है, वह अशुद्ध समकित है। तो कहते हैं कि मैं तो शुद्ध समकित कहूँगा। भगवान ने कहा वैसा शुद्ध समकित कहूँगा। पण्डितजी! शुद्ध अर्थात् निश्चय। अपना चैतन्य प्रभु पूर्णानन्द है, उसके अवलम्बन से जो ... अनुभूति में प्रतीति होती है, उसे निश्चय शुद्ध समकित कहा जाता है। समझ में आया? साथ में व्यवहार होता है, परन्तु वह व्यवहार जाननेयोग्य चीज़ हो गयी, वह आदरनेयोग्य नहीं, आदरयोग्य नहीं। समझ में आया?

'जिन उक्तं सुद्ध संमत्तं' इतने शब्दों में (ऐसा कहा कि) शुद्ध समकित को भगवान ने कहा, वैसा कहूँगा। मेरा आत्मा और सबका आत्मा अखण्डानन्द शुद्ध पूर्णानन्द चैतन्यप्रकाश पुंज है, उसके अन्दर आत्मा का अभिप्राय और परिणाम अभिमुख—स्वभाव सन्मुख होकर, ध्रुव स्वभाव सन्मुख होकर, चैतन्य एकरूप ज्ञायकस्वभाव सन्मुख होकर जो अपने में निश्चय शुद्ध सम्यग्दर्शन प्रगट होता है, वह सर्वज्ञ ने कहा, उसे मैं कहता हूँ। सेठी! शुद्ध समकित कहने में तो शुद्ध की अपेक्षा से दूसरा विकल्प है, यह सिद्ध हुआ। उसे अशुद्ध समकित कहो या व्यवहार समकित कहो। वह जाननेयोग्य है, आदरनेयोग्य नहीं, यह इसमें आ गया। शोभालालजी! यह सब विचार करना पड़ेगा। मात्र पैसा... पैसा... पैसा... करते हैं न! तम्बाकू और पैसा, दो।

मुमुक्षु : यह तो कारणकार्य का सम्बन्ध है।

पूज्य गुरुदेवश्री : कारणकार्य का दूसरा सम्बन्ध है। वहाँ भी कारणकार्य है, यहाँ भी कारणकार्य है, हों! एक जगह लिखा है। कहाँ लिखा है खबर है? कारणकार्य। दूसरे में लिया है? कारणकार्य। पृष्ठ ४१। देखो, भाई! पृष्ठ ४१। उसमें से निकालो।

देखो, पृष्ठ ४१ गाथा... देखो भाई ८०वीं गाथा में कहा है। ज्ञानसमुच्चयसार की ८० गाथा। ८०, देखो। निकाली? ८०।

कारणं कार्ज सिद्धं च, जं कारणं कार्ज उद्यमं।
स कारणं कार्ज सिद्धं च, कारणं कार्जं सदा बुधैः ॥८०॥

क्या कहते हैं?

मुमुक्षु : यह तो उपादान....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, उपादान आ गया मूल तो। ... लेना है न। यहाँ जो शुद्ध कहा है तो शुद्ध समकित का कारण भी शुद्ध ही है। समझ में आया? शुद्ध का कारण भी शुद्ध और शुद्ध का कार्य भी शुद्ध। जरा सूक्ष्म बात है। थोड़ी सूक्ष्म पड़ेगी, हों! परन्तु सुननी पड़ेगी। तुम तारणस्वामी समाज है हमारा, हम समैया है, ऐसा कहते हैं। तो समझना तो पड़ेगा या नहीं? विचार करना कि क्या कहते हैं।

देखो, **कारण से ही कार्य की सिद्धि होती है... 'जं कारणं कार्ज उद्यमं' कारण वही है जिससे कार्य के सिद्ध करने का पुरुषार्थ किया जा सके...** निमित्त कारण उसे कहते हैं कि जो शुद्ध सम्यग्दर्शन और शुद्ध आत्मा के श्रद्धा-ज्ञान का पुरुषार्थ किया जाये। वह पुरुषार्थ कैसे करे? त्रिकाल शुद्ध है, उस ओर का पुरुषार्थ किया जाये। समझ में आया? यह कारण भी शुद्ध है और कार्य भी शुद्ध है। वर्तमान यहाँ कहा न? '**सुद्ध संमत्तं**', तो शुद्ध समकित का कारण, वह अशुद्ध समकित जो है व्यवहार होता है, परन्तु वास्तव में कारण नहीं। भाई! दो कहा। समझ में आया? यह तो कोई-कोई बोल लिख लिये थे। अभी थोड़ा पढ़ा है। इसका अभ्यास तो है नहीं। एक बार बहुत वर्ष पहले सब देखा था। तो क्या कहते हैं, देखो!

कारण वही है जिससे कार्य के सिद्ध करने का पुरुषार्थ किया जा सके... व्यवहार समकित का पुरुषार्थ करने से कोई निश्चय समकित होता नहीं। समझ में आया? व्यवहार का विकल्प जो है देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा का राग, पंच महाव्रत का राग, वह विकल्प का पुरुषार्थ करने से निश्चय कार्य का शुद्ध का पुरुषार्थ होता नहीं। अपने स्वभाव सन्मुख शुद्ध चैतन्य का पुरुषार्थ कारण शुद्ध को बनाकर जो पुरुषार्थ करता है

तो शुद्ध कारण और शुद्ध सम्यग्दर्शन उसका कार्य। कारणपरमात्मा अपना त्रिकाल स्वभाव जो है, उसका पुरुषार्थ अन्तर (में) करने से कारण भी शुद्ध और उसका सम्यग्दर्शन कार्य भी शुद्ध।

यहाँ कहा न '**सुद्धं संमत्तं**' तो उसमें व्यवहार समकित कारण है और निश्चय समकित कार्य है, ऐसा व्यवहारनय से कथन किया जाता है। परन्तु व्यवहार अभूतार्थ है, वह सत्यार्थ नहीं। सत्यार्थ तो यह है कि निश्चय '**भूदत्थमस्सिदो खलु समादिट्ठी हवदि जीवो**'। अपना स्वभाव भूतार्थ जो शुद्ध है, उस ओर का पुरुषार्थ करने से अपने शुद्ध सम्यग्दर्शन की प्राप्ति होती है। ऐसा '**जिन उत्तं**' ऐसा जिनेश्वरदेव वीतराग परमात्मा कहते हैं। देखो, ... का शब्द फिर लेंगे। यहाँ आया न कारण?

यहाँ मोक्ष साधन में... देखो, **कारण और कार्य दोनों शुद्ध हैं...** ८० गाथा। ८० में देखो। '**स कारणं कार्ज सिद्धं च**' है? कारण भी शुद्ध है और कार्य भी शुद्ध है। अभी बड़ी गड़बड़ चलती है। समझ में आया? तो कहते हैं कि शुद्ध सम्यग्दर्शन आत्मा की पर्याय प्रगट हो, उसमें कारण पुरुषार्थ भी शुद्ध है और सम्यग्दर्शन उसका कार्य भी शुद्ध है अथवा त्रिकाल द्रव्य भी शुद्ध है और पर्याय भी शुद्ध है। यह तो (टेप में) उतरता है, यह वहाँ बराबर सुनना। '**स कारणं कार्ज सुद्धं च**' तो कोई कहे, समझ में आया? भाई! व्यवहार सम्यक् हो तो उससे निश्चय प्राप्त होगा, यह व्यवहारनय का अभूतार्थ कथन है, असत्यार्थ कथन है, सत्यार्थ नहीं। वस्तुस्वरूप ऐसा नहीं। यह बड़ी गड़बड़ अभी चलती है।

तो कहते हैं, '**कारणं कार्जं सदा बुधैः**' देखो! **बुद्धिमानों को सदा उसी शुद्ध कारण को करते रहना चाहिए।** '**बुधैः**' (बुद्धिमानों को) सदा कारण-कार्य शुद्ध का समझना चाहिए। देखो! सम्यग्ज्ञानी को, बुद्धिवन्त को, सम्यक् समझणवाले को कारण और कार्य सम्यग्दर्शन में मोक्षमार्ग, निश्चय मोक्षमार्ग जो है सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, वह शुद्ध है। तो उसका पुरुषार्थ भी अन्तर सन्मुख का शुद्ध है अथवा उसका कारण भी त्रिकाल शुद्ध है। ऐसा बुद्धिमान सम्यग्ज्ञानियों को समझना चाहिए। पण्डितजी! परन्तु पण्डितजी को खबर नहीं, फिर क्या करे अन्दर? उलहाना देना चाहिए। सेठ को देते हैं और दोनों को देते हैं। तुमको देना। तुम प्रमुख मुख्य हो। समझ में आया?

ओहो! '**जिन उक्तं**' त्रिलोकनाथ भगवान ने कारण और कार्य शुद्ध कहे हैं। समझ में आया? यदि कारण अशुद्ध है और कार्य शुद्ध है, ऐसा कहा गया हो, शास्त्र में आया हो तो वह व्यवहारनय का कथन है। '**ववहारोऽभूदत्थो**' यह व्यवहार का कथन असत्यार्थ है। निमित्त का ज्ञान कराने के लिये कहा है। परन्तु उससे सम्यक् निश्चय होता है, ऐसा है नहीं। यह ज्ञानसमुच्चयसार में से निकालकर कहते हैं, हों! समझ में आया?

मुमुक्षु : तो ही वह ज्ञान का सार कहलाये न।

पूज्य गुरुदेवश्री : तो ज्ञान का सार। समयसार कहो, समुच्चयसार कहो। समुच्चय अर्थात् ज्ञान में जो सम्यक्ता है, उसका सार क्या है, यह कहा है।

बुद्धिमानों को सदा उसी शुद्ध कारण को करते रहना चाहिए। और किसी जगह इसमें फिर ऐसा लिखा है कि व्यवहार पहला साधन हो, फिर निश्चय होता है। परन्तु ऐसी बात तो यहाँ कहनी ही नहीं। समझ में आया? यह पण्डित का कथन अन्दर अर्थ में... बात तो जैसी है, वैसी लिखना चाहिए। जहाँ व्यवहार से आया हो... व्यवहार अन्दर आता है, क्या कहा, देखो! यह शब्द का आता है कि भगवान की वाणी शब्द है, शब्द से ज्ञान होता है, ऐसा पाठ में आता है। समझ में आया? भगवान की वाणी शब्द है। किसी जगह आता है। अभी ख्याल में नहीं। देखो न यहाँ हो तो। ममलपाहुड़ में है न? क्या है? ममल १५२ पृष्ठ। उसमें गाथा कौन सी है, देखो! १५२ पृष्ठ है। ११ वीं गाथा है। ममलपाहुड़ दूसरा भाग। यह फूलना है न, फूलना? कौन सा? सुद्धो... ७० में है। उसकी गाथा है। देखो, ध्रुव-ध्रुव। यह गाथा ११वीं। क्या शब्द पड़ा है? देखो, ... शब्द यह पड़ा है भाई! यह दूसरे में है। ध्रुव शब्द कहा है, परन्तु कहना है ध्रुव का वाच्य। समझ में आया? ममलपाहुड़ दूसरा भाग। यह ध्रुव... छन्द, इसका ११वाँ श्लोक। यह बाद में देख लेना। यहाँ तो सब देख लिया है। यह आ गया है।

यहाँ क्या कहते हैं, देखो! **यहाँ ध्रुव शब्द का प्रकाश हुआ है।** पाठ में ध्रुव शब्द पड़ा है। यह निमित्त से कथन कहा है। परन्तु वास्तव में ध्रुव शब्द का वाच्य ध्रुव आत्मा का प्रकाश हुआ है। समझ में आया? ध्रुव शब्द का प्रकाश तो वीतराग की वाणी हुई। वाणी में ध्रुव शब्द (आया)। उसमें आया ध्रुव। चैतन्य भगवान ज्ञायक त्रिकाल नित्यानन्द

है। तो ध्रुव शब्द का प्रकाश हुआ, ऐसा कहा। इसका अर्थ कि वाणी का प्रकाश हुआ। वाणी में यह आया, परन्तु वाणी में क्या आया? कि ध्रुव शुद्ध आत्मा जो चैतन्यमूर्ति ज्ञायक है, उसके सन्मुख होकर प्रकाश करो। समझ में आया?

.... **समता भाव में आत्मा के शुद्ध भाव का आनन्द हो रहा है।** ऐसा ध्रुव आत्मा भगवान की वाणी में ध्रुव आया। तो उससे यहाँ वाणी से समझा, ऐसा व्यवहार से कहा जाता है, यह व्यवहारनय से। यह पाठ में बहुत आया है। व्यवहार इसमें आता तो है, परन्तु लोग समझते नहीं। व्यवहार से-शब्द से ज्ञान होता है... शब्द से ज्ञान होता है। तब शब्द तो पर चीज़ है। समझ में आया? यह तो लिखा है, भाई! उपादान-निमित्त। लिख लेना थोड़े-थोड़े बोल यहाँ से जाकर। शब्द तो निमित्त हैं। वीतराग की वाणी होती है तो भी निमित्त है, पर है। तो उससे ज्ञान होता है, ऐसा पाठ में आता है। तो उसका अर्थ निमित्त है। अपने से जब सम्यग्ज्ञान ध्रुव का हुआ तो वीतरागी वाणी को निमित्त कहा जाता है। शब्द से ज्ञान हो, तब तो सर्वज्ञ की वाणी समवसरण में बहुत लोग सुनते हैं, सबको होना चाहिए। परन्तु ऐसा है नहीं।

यह ध्रुव ज्ञान का उदय हुआ है। देखो, **शुद्ध भाव में रमण करना, वही ध्रुव आत्मा का दर्शन है।** ... अपना ध्रुव चैतन्यमूर्ति भगवान पुण्य-पाप के राग से रहित, निमित्त से रहित, अपनी वर्तमान पर्याय सन्मुख, अभिमुख आत्मा को करना और उसमें रमना, उसे ध्रुव का प्रकाश होता है, उसमें आत्मा का प्रकाश होता है, उसमें आत्मा का अनुभव मोक्षमार्ग होता है। अन्य से मोक्षमार्ग होता नहीं। समझ में आया? यह ध्रुव शब्द से कहा है। कहो, यह कारणकार्य की बात आ गयी।

अब कहते हैं कि अरे! **शुद्ध सम्यग्दर्शन भव्य जीवों के द्वारा साधने योग्य है...** २५वीं गाथा। '**सार्धं भव्यलोकयं**' पात्र जीव भव्य है। यह क्यों लिया? कि अभव्य लायक नहीं। यह भी साथ में लिया। अभव्य जीव सिद्ध किये, अभव्य है। **भव्य जीवों के द्वारा साधने योग्य है...** लायक प्राणी, योग्य प्राणी, अपने आत्मा की प्रकाशशक्ति को प्रगट करने का अभिलाषी प्राणी द्वारा साधनेयोग्य है। **सम्यग्दर्शन भव्य जीवों के द्वारा साधने योग्य है...** अभव्य जीव साधनेयोग्य है नहीं। समझ में आया?

'तस्याति गुणनिरूपं च' उसी सम्यग्ज्ञानी के अन्तरंग में गुणों के धारी आत्मा

का स्वभाव झलकता है... 'ति गुणनिरूपं' गुण का पुंज ज्ञान आत्मा है, उसकी अस्ति झलकती है। सम्यग्ज्ञान में, सम्यग्दर्शन में गुण का पुंज आत्मा झलकता है अथवा अपने ज्ञान में ज्ञेय होता है। समझ में आया? भारी सूक्ष्म! सेठी! अपने ज्ञान की पर्याय को अन्तर्मुख करने से सम्यग्ज्ञान का पुंज जो अनन्तगुण का रूप है, वह ज्ञान की पर्याय में झलकता है अर्थात् प्रतीति में आता है और अनुभव में आता है। कहो, समझ में आया?

'बुधै जनै सुध सार्धं' लो! **'बुधै जनै सुध सार्धं' बुद्धिमान सम्यग्ज्ञानी महात्माओं के द्वारा ही शुद्ध स्वभाव जो साधनेयोग्य है, वह साधन किया जाता है।** धर्मात्मा से तो शुद्ध का साधन किया जाता है। अशुद्ध का साधन नहीं किया जाता। अशुद्ध अन्दर राग आता है। साधन में भी कहा कि साधन शुद्ध का करना है, अशुद्ध का साधन नहीं। समझ में आया? विकल्प आता है। पहले सुनने में, देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा करने में, नौ तत्त्व, छह द्रव्य क्या है, इसके ज्ञान में शुभराग का विकल्प आता है, परन्तु वह वास्तव में साधनेयोग्य नहीं। क्या साधनेयोग्य है? **'बुधै जनै सुध सार्धं'** उसे तो शुद्ध चैतन्यमूर्ति भगवान की निर्मल पर्याय साधनेयोग्य है। राग और विकल्प, वह साधनेयोग्य नहीं। निश्चय से बात की है न तो उसमें यह व्यवहार लोप हो जाता है, इसका अर्थ? व्यवहार है अवश्य, परन्तु साधनेयोग्य नहीं और उस पर रुचि करनेयोग्य नहीं। आरोप दे सकते हैं कि यहाँ तो व्यवहार की बात... परन्तु उसमें आ गया। **'बुधै जनै'** साधन साध्य करना तो व्यवहार साधन विकल्प आता है, परन्तु उसका लक्ष्य छोड़ देना, रुचि छोड़ देना। अपने शुद्ध स्वरूप का साधन करना। यह ज्ञानी का कर्तव्य है। अज्ञानी का कर्तव्य रागादि के साधन से मेरा कल्याण हो जायेगा, ऐसा अज्ञानी मानता है। कहो, समझ में आया? यह २५ गाथा हुई। २६ (गाथा)।

तं समत्तं उक्तं सुद्धं, केरि संके न रुवं।
तं संमत्तं तिस्टियत्वं, कथ्यवासं वसंतं॥
उत्पन्नं कोपि स्थानं, श्रेष्ठ प्रौढ मानं प्रमानं।
तं संमत्तं कस्य क्रान्तं, कस्य दिस्टि प्रयोजनम्॥२६॥

देखो, कहते हैं... समझ में आया? यह आगे लेंगे। पृष्ठ १९१ है, भाई! ३५० गाथा

है। पृष्ठ १९१। जड़ा? १९१। ३५० गाथा है, देखो!

अस्तेयं पद रहियं, जिन उक्तं च लोपनं जाने।
अनेय व्रतधारी, अस्तेय ससहाव रहिएन॥३५०॥

देखो यहाँ भी '**जिन उक्तं**' (कहा है)। ३५० गाथा है। क्या कहते हैं? **आगम के पदों का और का और अर्थ करके जिन आगम के कथन को छिपाना चोरी जानो...** समझ में आया? आगम का कथन क्या है? परमार्थ क्या है? ऐसे कथन को छिपाकर, देखो, '**अस्तेयं पद रहियं, जिन उक्तं च लोपनं जाने।**' सर्वज्ञ परमात्मा ने शुद्धभाव का जो कथन किया है, उसका अर्थ दूसरा करके लोप करते हैं, गोप करते हैं **और का और अर्थ करके जिन आगम के कथन को छिपाना चोरी जानो तथा आत्मस्वभाव में रमण न करके आत्मज्ञान रहित अनेक व्रतों को पालना भी चोरी है।** क्या कहा? देखो, पाठ में है या नहीं? '**अनेय व्रतधारी, अस्तेय ससहाव रहिएन**' जो कोई प्राणी अपना सम्यग्दर्शन-ज्ञान क्या चीज़ है, उसे प्राप्त किये बिना, आत्मज्ञान प्राप्त किये बिना उन अनेक व्रतों को पालना, वह भी चोर है। ...भाई! समझ में आया? समझ में आया? नहीं आया। समझ में आया? ओहोहो!

देखो, पण्डितजी! कहते हैं कि तेरा शुद्ध स्वभाव, उसकी श्रद्धा, ज्ञान तो किया नहीं, आत्मज्ञान किया नहीं और राग से धर्म मानकर व्रत, दया, दान, व्रतादि पालता है, तो वह तो चोर है। भगवान के सन्तों ने और भगवान के भक्त सम्यग्दृष्टियों ने अपने आत्मज्ञानपूर्वक पश्चात् स्वरूप की स्थिरता का व्रत और व्यवहार विकल्प के व्रत उसमें आये। परन्तु तुझे तो आत्मज्ञान नहीं, सम्यग्दर्शन नहीं। सम्यग्दर्शन क्या चीज़ है, उसकी तुझे पहिचान नहीं। हम व्रतधारी हैं, हम प्रतिमाधारी हैं। चोर है, ऐसा कहते हैं। सेठ! क्या हुआ? देखो, '**ससहाव रहिएन**' पाठ है या नहीं? '**ससहाव रहिएन**' अन्तिम शब्द है न? भाई! '**ससहाव रहिएन**' '**अस्तेय**' वह चोर है। अपना शुद्ध स्वभाव ज्ञायक चिदानन्दमूर्ति की ओर स्वसन्मुख होकर प्रतीति-ज्ञान किया नहीं, अनुभव किया नहीं। हम व्रत पालन करते हैं, हम तप करते हैं, हम दया पालते हैं, हम दान करते हैं, दुनिया को उपदेश करें तो बहुतों को लाभ होगा। चोर है। जो महासन्तों ने आत्मज्ञानपूर्वक व्रत

का पालन किया, तू आत्मज्ञान-ध्यान बिना करता है तो तू बड़ा चोर—गुनहगार है। सेठ! कठिन तो बहुत है।

मुमुक्षु : अभी समझ में नहीं आया।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं समझ में आया? देखो, लिखा तो है तुमने। यह पुस्तक तो तुमने प्रकाशित की है दूसरों को देने के लिये। समझ में आया? परन्तु इसमें ख्याल तो आवे कि क्या है? चोर है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया या नहीं? यह लिखा है इसमें, हों! .... चोर है, आहाहा! अरे! वहाँ तो लिखा है... पृष्ठ ४४ है, भाई! ४४ पृष्ठ है न! यह तो १६वाँ है। ४४ पृष्ठ। निगोद गच्छई। देखो, ४४ (पृष्ठ) और ८४ गाथा है। ८४ गाथा तुम्हारी। अकेली ८४।

मिथ्या मिथ्यामयं दिस्टं, असत्य सहित भावना।
अनृतं अचेत दिस्टंते, मिथ्यातं, निगोयं पतं॥८४॥

देखो, ८४ है। है? निकली? '**मिथ्या मिथ्यामयं दिस्टं**' अरे! यह **मिथ्यात्व कर्म के उदय से श्रद्धान...** ऐसा नहीं लेना। मिथ्यात्व कर्म के उदय से नहीं लेना। '**मिथ्या मिथ्यामयं दिस्टं**' इतना लो, भाई! मिथ्या अभिप्राय से मिथ्यात्वरूप से देखता है, ऐसा लेना। उसमें लिखा है कि **मिथ्यात्व कर्म के उदय से...** सब कर्म को घुसा देते हैं अन्दर में सर्वत्र। हमारे पण्डितजी भी एक बार कहते थे। ज्ञानावरणीय के कारण से उसे ज्ञान नहीं। कहा, ऐसा नहीं, नहीं। पण्डितजी! कहा था न? उसमें लिखा है कि हों! '**मिथ्या मिथ्यामयं दिस्टं**' मिथ्या अभिप्राय से मिथ्यात्व देखता है, ऐसी बात है। कर्म-कर्म क्या करता है? कर्म तो जड़ है, परद्रव्य है। परद्रव्य क्या अपने को मिथ्यादृष्टि करा सकता है? तो '**मिथ्या मिथ्यामयं दिस्टं**' मिथ्याभाव से वस्तु को मिथ्या-विपरीत श्रद्धान करता है। बिल्कुल मिथ्यात्व होता है।

'**असत्य सहित भावना**' वस्तु की खबर नहीं तो भावना जैसी मानी, वैसी करता है। राग की, पुण्य की, निमित्त की, असत्य पदार्थ से लाभ की भावना रहती है। '**अनृतं अचेत दिस्टंते**' **वहाँ सब झूठ ही झूठ व अज्ञान ही अज्ञान दिखलाई पड़ता है...** देखो '**अनृतं अचेत दिस्टंते**' वहाँ तो अमृत ज्ञान के भान बिना सब झूठा-झूठा देखने को मिलता है। मिथ्या अभिप्राय और मिथ्या ज्ञान है तो मिथ्याज्ञान से जो देखे, वह सब

खोटा ही दिखता है उसे। यह ८४ गाथा है न। अचेत है, सचेत नहीं—आत्मा के भान बिना। अचेत ही दिखता है, सब जड़ ही दिखता है। राग, पुण्य, विकल्प ऐसा ही उसे दिखता है। अपना आत्मा सचेत ज्ञानमूर्ति है, यह उसे दिखता नहीं। समझ में आया? **सब झूठ ही झूठ व अज्ञान ही अज्ञान...** अचेत अर्थात् अज्ञान। उसमें राग, पुण्य, पाप का विकल्प है, वह वास्तव में अज्ञान है। अज्ञान का अर्थ? उसमें ज्ञान की जागृति का अभाव है। शुभ दया, दान, व्रत, भक्ति का विकल्प है, वह राग है और राग को शास्त्र में अचेत कहा है। क्यों? कि उसमें ज्ञान की जागृति का अभाव है। तो अज्ञानी राग को ही देखता है, पुण्य को ही देखता है, पुण्य से लाभ होता है, ऐसा देखता है। समझ में आया? तो कहते हैं **व अज्ञान ही अज्ञान दिखलाई पड़ता है...** जहाँ देखो वहाँ अज्ञान। विपरीत अर्थ का ही उसे प्रतिभास होता है।

उसका फल क्या है? **'मिथ्यातं, निगोयं पतं' ऐसे मिथ्यात्व के फल से यह जीव निगोद में जाकर बिल्कुल अज्ञानी ऐकेन्द्रिय हो जाता है।** शोभालालजी! निगोद। यह सब पद्धति कुन्दकुन्दाचार्य की ली है। कुन्दकुन्दाचार्य में ऐसा आया है न! दर्शनपाहुड में आया है न, कि एक भी वस्त्र का धागा रखकर मैं मुनि हूँ, ऐसा मानता है, मुनि मनाता है और दूसरे की मान्यता को सम्मत करता है, वह निगोदं गच्छई। क्योंकि मुनिपने की जो वास्तविक स्थिति संवर-निर्जरा की क्या दशा होती है, उसके आस्रव के विकल्प की मर्यादा कितनी और संयोग में कितने निमित्त हट जाते हैं और कितने रहते हैं, यह किसी तत्त्व की उसे खबर नहीं। तो ऐसे मुनि माननेवाला, वस्त्र का एक धागा रहे और मुनि है, ऐसा माने, मनावे, माननेवाले को सम्मत हो, भगवान कुन्दकुन्दाचार्य अष्टपाहुड़ में पुकार करते हैं (कि) निगोदं गच्छई। चला जायेगा, एक शरीर में अनन्त आत्मा है, वहाँ चला जायेगा। यहाँ कहते हैं कि **'निगोयं पतं'** निगोद में जायेगा। वाणी तो जरा कठिन पड़े जगत को। कहो, समझ में आया? आहाहा! लो! समझ में आया? क्या कहा? २५ चलती है। २५ पूरी हुई। २६वीं, २६वीं।

तं समत्तं उत्तं सुद्धं, केरि संके न रुवं।
तं संमत्तं तिस्टियत्वं, कथ्यवासं वसंतं॥

उत्पन्नं कोपि स्थानं, श्रेष्ठ प्रौढ मानं प्रमानं।
तं संमत्तं कस्य क्रान्तं, कस्य दिस्टि प्रयोजनम्॥२६॥

इस दृष्टि का प्रयोजन क्या है, वह बताते हैं। **वही सम्यग्दर्शन शुद्ध कहा गया है...** अपने स्वरूप की शुद्धि त्रिकाली द्रव्य पड़ा है, उसकी अन्दर निर्विकल्प पर्याय से शुद्ध श्रद्धा प्रगट करना, ऐसे सम्यग्दर्शन को शुद्ध कहा है। वहाँ किसी प्रकार की शंका का रूप नहीं है। अकेला निःशंक... निःशंक... निःशंक... मैं परमात्मा हूँ। समझ में आया? किसी प्रकार की शंका का रूप ही नहीं दिखता। अकेला आत्मरूप परमात्मा शुद्ध अभेद अखण्ड है, उसमें सम्यग्दृष्टि को किसी प्रकार की शंका का रूप नहीं दिखता। कोई शंका नहीं होती। कैसा होगा? ऐसा परमात्मा? मैं इतना परमात्मा हूँ? अरे भाई! क्या उस अण्डे में मोर नहीं? अण्डा इतना है या नहीं? वह मोर का अण्डा। अण्डा कहते हैं न? उसमें साढ़े तीन हाथ का मोर है या नहीं? कहाँ से निकलता है? उसमें है, वह निकलता है या बाहर से कहीं से आता है? समझ में आया?

इसी प्रकार भगवान आत्मा अपनी शक्ति में परमात्मा की शक्ति अन्दर पड़ी है। उसे अन्तर्मुख होकर पर्याय में एन्लार्ज करना है। पर्याय में परमात्मा। तो अपना स्वरूप ही परमात्मा है, ऐसा कहते हैं, देखो! उसमें इसे शंका नहीं। मैं ही परमात्मा हूँ। परमस्वरूपधारी आत्मा पूर्णानन्द अनन्त चतुष्टय को धरनेवाला। मुझमें अनन्त ज्ञान भरा है, अनन्त दर्शन है, अनन्त आनन्द है, अनन्त बल का धनी मैं ही हूँ। उसमें समकिती को कोई शंका नहीं पड़ती। अभी यह चौथे गुणस्थान की बात चलती है। शोभालालजी! यह तो अभी पाँचवाँ और छठवाँ आ गया।

'तं संमत्तं तिस्टियत्वं' उसी सम्यक्त्व में जमे रहना चाहिए... ऐसा अपनी दृष्टि में परमात्मस्वरूप जो अन्दर में प्रतीत हुआ, उसमें स्थिर होकर रहना चाहिए, उसमें रहना चाहिए। विकल्प आवे तो भी उसका आदर करना नहीं। अपने स्वरूप में स्थिर होकर रहना, उसका नाम शुद्ध सम्यग्दृष्टि कहा जाता है। समझ में आया? **'कथ्यवासं वसंतं'** क्या कहते हैं? **किसी भी स्थान पर रहो...** कोई शुद्ध सम्यग्दर्शन (प्राप्त करके) सातवें नरक में भी पड़ा हो? समझ में आया? .... होता है। ऐसा नहीं कि भगवान के नजदीक

में बैठा हो तो होता है या मनुष्य में ही होता है। सातवें नरक में भी होता है। भगवान के समवसरण में बैठा हो और होता है। समवसरण में बैठा हो और मिथ्यात्व ... बाहर की बात क्या करे? समझ में आया?

'कथ्यवासं वसंतं' किसी भी स्थान पर रहो, किसी भी स्थान पर यह सम्यक्त्व पैदा हो सकता है... 'उत्पन्नं कोपि स्थानं' शब्द पड़ा है। किसी भी स्थान में प्रगट होता है। कोई स्थान उसे विघ्न नहीं करता। यह तो आया न शक्ति, नहीं? असंकोचविकासशक्ति। कोई क्षेत्र-काल उसे विघ्न नहीं कर सकता। कोई क्षेत्र या काल बाहर में कोई अपने सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र प्रगट करने में किसी का विघ्न है ही नहीं। अपना स्वरूप में ही इतना सामर्थ्य है। **किसी भी स्थान पर यह सम्यक्त्व पैदा हो सकता है...**

'श्रेष्ठ प्रौढ मानं प्रमानं' कैसा है शुद्ध सम्यग्दर्शन? **यह सम्यक्त्व ही श्रेष्ठ है, दृढ़ है...** प्रौढ़-प्रौढ़ होता है न यह? बड़ी उम्र हो जाये फिर। प्रौढ़ विवेकी। प्रौढ़ विवेक, वह महान विवेक। प्रौढ़ विवेक महान, ऐसा। प्रौढ़ अर्थात् महान। जिसका स्वरूप दृढ़ है। **व प्रमाणरूप है...** वह प्रमाणरूप सम्यग्दर्शन है, यथार्थरूप है। अपने शुद्ध स्वभाव की दृष्टि करना, विकल्प और संयोग की रुचि हटाकर, वही सम्यग्दर्शन प्रमाणरूप है। व्यवहार सम्यग्दर्शन प्रमाणरूप नहीं, ऐसा कहते हैं, भाई! आहाहा! वह प्रमाणरूप नहीं। होता है, जाननेयोग्य है, परन्तु प्रमाणरूप तो अपना शुद्ध स्वभाव भगवान, उसके ज्ञानप्रकाश में घुसकर अनुभूति में प्रतीति होना, वही सम्यग्दर्शन प्रमाणभूत है। व्यवहार समकित, व्यवहार समकित देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा करो, समकित है। है ही नहीं कभी। कौन कहता है? वह प्रमाण ही नहीं। समझ में आया? यह स्वाध्याय करना चाहिए। चिमनभाई! स्वाध्याय न करे, बहियाँ जाँचे नामा की।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु यह तो जाँचे कि क्या है? क्या लिखा है? कि पिताजी ने बहियों में कितना उत्तराधिकार दिया है। पिताजी गुजर जाये तो खोजता है या नहीं? पच्चीस लाख छोड़कर गये है। बराबर। पाँच लाख इसके, पाँच लाख इसके। जाँच करता है या नहीं? तो सन्त, धर्मात्मा क्या-क्या उत्तराधिकार रखकर गये हैं?

मुमुक्षु : यह जाँच नहीं की।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं की। समझ में आया?

तो कहते हैं, **दृढ है व प्रमाणरूप है।** यह सम्यग्दर्शन। निश्चय सम्यग्दर्शन, वही प्रमाणभूत है। आहाहा! जिसे यहाँ शुद्ध कहा है। और **'तं संमत्तं कस्य क्रान्तं' यह सम्यक्त्व किसी जीव के ही प्रकाश होता है...** समझ में आया? महान प्रयत्नवन्त प्राणी शुद्ध स्वभाव सन्मुख होता है, उसे **'क्रान्तं'** अर्थात् सम्यग्दर्शन का प्रकाश होता है। अब एक अन्तिम शब्द है बड़ा। **'कस्य दिस्टि प्रयोजनम्' कोई ही जीव की दृष्टि अपने अर्थ पर जाती है।** प्रयोजन के ऊपर। वास्तव में तो यहाँ प्रयोजन सिद्ध करना है। यह ११वीं गाथा में कहा न कि व्यवहार अभूतार्थ है। तो निश्चय-व्यवहार का विषय तो है। निश्चयनय का विषय है और व्यवहारनय, दोनों का विषय है। प्रयोजन सिद्ध करना हो तो द्रव्य के ऊपर दृष्टि करने से प्रयोजन सिद्ध होता है। क्या कहा, समझ में आया? यह निश्चय और यह व्यवहार है। यह निश्चय और व्यवहार, ऐसा जानना नहीं, प्रयोजन सिद्ध करना है। तो व्यवहार की दृष्टि हटाकर **'प्रयोजनम्'** देखो, है न शब्द? **'कस्य दिस्टि'** किसी प्राणी की दृष्टि प्रयोजनभूत तत्त्व एकाकार भूतार्थ भगवान आत्मा एक समय में पूर्ण सत् परमेश्वर है, उसके ऊपर दृष्टि किसी सम्यग्दृष्टि जीव की जाती है। अज्ञानी अपना प्रयोजन क्या है, वह समझता नहीं। वह तो राग करना, पुण्य करना, दया पालना, भक्ति करना, व्रत करना, यह हमारा प्रयोजन है। वह तो पुण्यबन्ध है। प्रयोजन कहाँ से आया तेरा? वह तो अनन्त बार किया है और अनन्त बार चार गति खुल्ली पड़ी है। रतनलालजी! समझ में आया? थोड़ा-थोड़ा।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह भी थोड़ा-थोड़ा ख्याल में तो आता है या नहीं कि ऐसा कहते हैं, ऐसा कहते हैं।

कहते हैं, ओहो! **'कस्य'** कोई जीव दो नय का ज्ञान करके खपे, इससे कोई जीव की प्रयोजन के ऊपर दृष्टि जाती है। प्रयोजन व्यवहार का नहीं। प्रयोजन निश्चय अर्थात् स्व द्रव्य-गुण-पर्याय निश्चय है। उसका भी नहीं। प्रयोजन त्रिकाल द्रव्य सामान्य है, वह मुख्य है, उसकी प्रयोजन के ऊपर दृष्टि कभी किसी प्राणी की जाती है, उसे सम्यग्दर्शन

होता है। समझ में आया? यह दो गाथा हुई। हुई न? २५ और २६ दो हुई। २७वीं।

तं समत्तं सुद्धं बुद्धं, तिहुवन गुरुवं, अप्प परमअप्प तुल्यं।

देखो, यह शब्द तो भाई! गाथा में तारणस्वामी बहुत डालते हैं। '**अप्प परमअप्प**' आत्मा परमात्मा... आत्मा परमात्मा... बहुत गाथाओं में (आता है)। ममलपाहुड़ में, उसमें बहुत जगह डालते हैं। यह कहते हैं कि .... पामर है? नहीं प्रभु! तू पामर नहीं, हों! तू तो अपना परमात्मा प्रगट कर, ऐसी तुझमें सामर्थ्य है। तू स्वभाव से परमात्मा ही है। अभी कहा न?

अव्वावाह अनंतं अगुरुलघु, सुयं सहज नंद स्वरूपं।
रूपातीतं व्यक्त रूपं विमल, गुण निहि न्यान रूपं स्वरूपं।
तं संमत्तं तिस्टियत्वं ति अर्थ समयं, संपूर्न सास्वतं पदं॥२७॥

देखो .... भाषा में किया है।

रूपातींत व्यक्त रूपं विमल, गुण निहि न्यान रूपं स्वरूपं।
तं संमत्तं तिस्टियत्वं ति अर्थ समयं, संपूर्न सास्वतं पदं॥२७॥

ठीक परन्तु आ गये। सब पण्डितजी आ गये। एक साथ सबको खबर तो पड़े कि इसका अर्थ क्या होता है?

'तं समत्तं' वह सम्यग्दर्शन निश्चय से... यहाँ तो शुद्ध की बात चलती है न? निश्चय सम्यग्दर्शन कहो या शुद्ध सम्यग्दर्शन कहो, दोनों एक ही बात है। समझ में आया? तो यहाँ शुद्ध कहा है और यह ३३ पृष्ठ पर भाई, निश्चय कहा है। शुद्ध सम्यग्दर्शन, वह निश्चय कहा। वहाँ भी शुद्ध सम्यग्दर्शन को निश्चय कहा है। सब जगह शुद्ध लिया है। ५९ गाथा है। ५९। ६० में एक कम।

सुधं च सर्व सुद्धं च, सर्वन्यं सास्वतं पदं।
सुधात्मा सुद्ध ध्यानस्य, सुधं संमिक्दर्सनं॥५९॥

यहाँ अर्थ में यह शुद्ध कहो या निश्चय कहो। लिखा है अन्दर। परन्तु उस शुद्ध का अर्थ ही निश्चय है। निश्चय कहो या शुद्ध कहो, व्यवहार कहो या अशुद्ध कहो। क्या कहते हैं, देखो। **शुद्ध सर्व पदार्थों में शुद्ध एक... 'सर्वन्यं सास्वतं पदं'** सब पद में

सर्वज्ञ स्वरूप अविनाशी पद है। ऐसा शुद्ध सर्वज्ञपद अपने में है। समझ में आया? यह सर्वज्ञ परमात्मा हुए, उनकी श्रद्धा करना, वह तो एक विकल्प है। यहाँ शुद्ध सम्यग्दर्शन में अपना सर्वज्ञस्वरूप अविनाशी पद है **वही शुद्ध ध्यान का विषयभूत ध्येय शुद्धात्मा है।** देखो, **'सुद्ध ध्यानस्य सुधात्मा'** अपना सर्वज्ञपद अन्तर में है। सर्वज्ञपद अन्दर में है? वह तो आ गया अपने ४७ शक्ति में। सर्वज्ञशक्ति है अपना आत्मा। सर्वज्ञगुण है, सर्वज्ञस्वभाव है, सर्वज्ञ तत्त्व है। ऐसा अपना सर्वज्ञ शुद्ध पद, वही शुद्ध ध्यान के विषयभूत ध्येय है। अपनी वर्तमान पर्याय ध्यान, उसका ध्येय, वह सर्वज्ञस्वभाव अपना निजस्वरूप है। उसका ध्येय राग, पुण्य, व्यवहार निमित्त नहीं। गजब निश्चय की बात लोगों को ऐसी कठिन पड़ती है। परन्तु निश्चय का अर्थ ही सत्यार्थ है। व्यवहार का अर्थ अभूतार्थ अर्थात् असत्यार्थ है। है। व्यवहारनय का विषय नहीं है, ऐसा नहीं; व्यवहार नहीं, ऐसा नहीं। परन्तु वह व्यवहार, देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति, पूजा, दान, दया, व्यवहार समकित, व्यवहार ज्ञान, व्यवहार चारित्र। यह दो प्रकार का चारित्र। समझ में आया? तो यह चारित्र व्यवहार जो है, वह विकल्प है। वह हो, परन्तु प्रयोजनभूत होकर उसके आश्रय से आत्मा को लाभ होता है, ऐसा नहीं है। समझ में आया? लो, शुद्ध विषयभूत है। **शुद्धात्मा का ध्यान ही शुद्ध निश्चय सम्यग्दर्शन है।** यह शुद्ध आत्मा का ध्यान, वह शुद्ध सम्यग्दर्शन है।

यहाँ अब कहते हैं कि **वह सम्यग्दर्शन निश्चय से शुद्ध, बुद्ध स्वरूप है...** २७ गाथा का अर्थ। **शुद्ध, बुद्ध स्वरूप है... 'तिहुवन गुरुवं' तीन लोक में श्रेष्ठ है...** तीन लोक में सम्यग्दर्शन अपना परमात्मस्वभाव, उसके अनुभव में प्रतीति होना, वह तीन लोक में श्रेष्ठ है। **'अप्प परमअप्प तुल्यं'** देखो! **जहाँ अपने आत्मा को परमात्मा के बराबर...** परमात्मा की बराबर शक्ति में, स्वभाव में, गुण में, सामर्थ्य में मेरा आत्मा ही परमात्मा है। परम-आत्म अर्थात् परमस्वरूप। परमस्वरूप ऐसा मेरा आत्मा बराबर है। उसमें अन्तर नहीं। **बाधा रहित...** बाधा नहीं। अपना परमात्मस्वरूप अव्याबाध है। कोई बाधा है नहीं। तीन काल में बाधा ध्रुव स्वभाव ज्ञायक में बाधा आती ही नहीं। **अनन्त...** है। उसकी शक्ति अनन्त है। अन्तर में सर्वज्ञपद जो शुद्ध सम्यग्दर्शन का ध्येय है, वह अनन्त है। अन्तरस्वरूप अनन्त है।

'अगुरुलघु,' अगुरुलघुमय आप ही अर्थात् बड़े छोटे की कल्पनारहित... अपना स्वरूप छोटा-बड़ा नहीं। वह तो जैसा है, वैसा है। त्रिकाल सहजात्मस्वरूप परमानन्दमूर्ति एकरूप है। वह निश्चय सम्यग्दर्शन का ध्येय है, वह उसका लक्ष्य है, प्रयोजन वह है। समझ में आया? **'सहज नंद स्वरूपं' स्वाभाविक आनन्दस्वरूपी...** कैसा है आत्मा? स्वाभाविक आनन्दस्वरूप ही आत्मा है। उसमें सहज आनन्द है। सहजानन्द, नित्यानन्द, शाश्वत् आनन्द। आत्मद्रव्य में अतीन्द्रिय आनन्द पड़ा है, वह सहजानन्दस्वरूप ही आत्मा है। उसका सम्यग्दर्शन में ध्येय करना चाहिए। अभी ऐसी बात हो गयी है कि शास्त्र के स्वाध्याय की बात घट गयी। व्रत, नियम, तप और कष्ट में उसमें लगा दिया। बस! उसमें लगा दिया। और वाँचन और श्रवण हो तो भी कहनेवाला व्यवहार को कहनेवाला बाहर की क्रिया, वह वाँचे तो ऐसा वह निकालता है—ऐसा अर्थ करता है। आगम का जो परमार्थ अर्थ है, ऐसा नहीं निकालकर दूसरा अर्थ करे, वह वीतराग का चोर है, गुनहगार है। चौरासी लाख की जेल में जायेगा। समझ में आया?

अगुरुलघुमय आप ही... जैसा है, वैसा भगवान आत्मा। **'सहज नंद स्वरूपं'** अब देखो, अस्ति-नास्ति दो करते हैं। कैसा है भगवान आत्मा, जो सम्यग्दर्शन का ध्येय? **'रूपातीत' पौद्गलिकरूप से रहित...** रूपातीत है। पुद्गल का, राग का रूप जिसमें है ही नहीं। नास्ति से बात की है। पुद्गल राग, पुण्य, विकल्प, निमित्त कोई उसमें है ही नहीं। तो है कैसा? वह तो पुद्गलातीत कहा। पुद्गल से रूपी से अतीत कहा। वह है कैसा? वह तो अतीत तो नास्ति से कहा। अस्ति से क्या है? ओहो! **'व्यक्त रूपं'** परन्तु उसका स्वभाव तो व्यक्त त्रिकाल ऐसा का ऐसा पड़ा है, व्यक्तरूप ही है। **तथा अनुभव में प्रगट रूप...** अपने सम्यग्ज्ञान में त्रिकाल द्रव्य जैसा है, वैसा प्रगट अनुभव में प्रतीति होती है। समझ में आया? यह तुमको याद इसके लिये किया था। थोड़ा याद करके, ध्यान, विचार करो, मनन करो और थोड़ी बात चलाओ। पहले याद किया था सेठ को। यह बुद्धिवाले हैं जरा तो इन्हें यह विशेष ख्याल आवे। ऐसा का ऐसा कहे और अपनी दृष्टि से अर्थ करे तो उसमें तत्त्व का लोप हो जाता है। समझ में आया?

अनुभव में प्रगट व्यक्त है। क्या कहते हैं? रूपातीत है, परन्तु अपने ज्ञान के प्रकाश में वह प्रगट है। अप्रगट वस्तु नहीं, व्यक्तरूप है। प्रगट अर्थात् द्रव्य तो ऐसा का

ऐसा पड़ा है। '**विमल, गुण निहि।**' '**विमल**' अर्थात् **निर्मल गुणों की निधि...** है। भगवान आत्मा जो सम्यग्दर्शन का विषय है, जो आत्माभिमुख परिणाम सम्यग्दर्शन का, वह आत्मा अभिमुख। परिणाम सम्यग्दर्शन अभिमुख। किसके सामने? आत्मा के। वह आत्मा कैसा है? कि **निर्मल गुणों की निधि...** है। समझ में आया? निर्मल गुण की निधि भण्डार भगवान है। परन्तु उसका ज्ञान करे नहीं, महिमा लावे नहीं। महिमा लावे को क्या कहते हैं? महिमा लाता नहीं। महिमा आती नहीं उसे। क्या चीज़ है? तो महिमा आये बना उस ओर परिणाम झुके कहाँ से? यह तो राग की महिमा, पुण्य की महिमा, निमित्त की महिमा, संयोग की महिमा, उसमें झुका हुआ है तो अनादि का झुका हुआ है। उसमें तेरा भला क्या हुआ? दाळिया समझते हो? वह चना नहीं होता चना? शुकरवारिया। खबर नहीं होगी इसे। चना खाते हैं। शुक्रवार को चना खाते हैं या नहीं? तो उसमें हमारे कहते थे एक बनिया व्यापारी कि दाळिया हुए? चना हुए? (अर्थात्) कुछ मिला या नहीं? ऐसा। लाभ हुआ या नहीं? वह चने में मिठास होती है न? तो कुछ मिठास हुई या नहीं?

कच्चा चना है न, उसमें स्वाद भरा हुआ है। कच्चे चने में भी स्वाद पड़ा है। तो अग्नि के निमित्त से सेंकने की पर्याय होती है तो स्वाद पड़ा है, वह प्रगट होता है। समझ में आया? तो प्रगट होने से पहले कचास है, तुराश है, बोबे तो चना उगता है। बोने से उगता है, खाने में तुरा लगता है। समझ में आया? और स्वाद आता नहीं। परन्तु एक बार सेंक डाले तो अन्दर में स्वाद शक्तिरूप पड़ा है, वह बाहर आता है। कचास का नाश होता है, बोने से उगता नहीं और स्वाद की मिठास आती है।

इसी प्रकार भगवान आत्मा अपने स्वभाव में अतीन्द्रिय आनन्दरस पड़ा है, सर्वज्ञपद के साथ। परन्तु पर्याय में अभिमुख दृष्टि स्वभाव-सन्मुख नहीं की, राग, पुण्य और निमित्त की दृष्टि से उसमें अज्ञान का स्वाद आता है। अपना स्वाद नहीं। अज्ञान का स्वाद, राग-द्वेष का स्वाद, विकार का स्वाद। एक बार सम्यक् अभिप्राय से आत्मा को सेके अर्थात् .... ऐसी दृष्टि हो तो अन्दर में जो आनन्द है, वह पर्याय में प्रगट आनन्द का अनुभव होने लगता है। समझ में आया? भारी सूक्ष्म बात, भाई! इसमें क्या करना, ऐसा तो कुछ आता नहीं। यह करना नहीं आता? सम्यक् अभिप्राय करना। उद्यम करना, यह

तो पहले आ गया। उसमें आया था कारण-कार्य में। कारण-कार्य में, भाई! समझ में आया?

व्यक्त **निर्मल गुणों की निधि...** भगवान आत्मा। देखो, निर्मल गुण की निधि कहो, निर्मल शक्ति का भण्डार कहो। अपने दोपहर में शक्ति चलती है न? ४७ शक्ति चलती है, वह सब गुण हैं। वह अनन्त शक्ति का भण्डार आत्मा है। अनन्त गुण का भण्डार कहो या अनन्त शक्ति का भण्डार कहो। और **'न्यान रूपं स्वरूपं'** स्वरूप क्या है? **'न्यान रूपं स्वरूपं'** रागरूप या पुण्यरूप या व्यवहाररूप या शरीररूप या कर्मरूप उसका स्वरूप है ही नहीं। **ज्ञानाकार स्वभावमय अनुभव किया जाता है...** अथवा ज्ञानरूप ही उसका स्वरूप है। उसका अनुभव करने से सम्यग्ज्ञान का स्वाद और सम्यग्ज्ञान का अनुभव होता है।

'तं संमत्तं तिस्टियत्वं' क्या कहते हैं? **उसी सम्यक्त्व भाव में ठहरना चाहिए...** ऐसे समकित भाव में आत्मा ध्रुवसन्मुख परिणाम को ले जाकर वहाँ अन्दर दृष्टि बराबर रखकर स्थिर होना चाहिए। कैसा है आत्मा? स्वभाव-सन्मुख होकर सम्यग्दर्शन प्रगट हुआ। **'ति अर्थ समयं'** तीन रत्न के साथ उत्पन्न होता है। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र। द्रव्यस्वभाव सन्मुख शुद्ध श्रद्धा-ज्ञान हुआ, तो शुद्ध श्रद्धा-ज्ञान के साथ स्वरूपाचरण अनन्तानुबन्धी का अभाव और जितने प्रमाण में स्थिरता, उतना सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की पर्यायसहित सम्यग्दर्शन उत्पन्न होता है। वह सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रमय आत्मा, वह अभेद आत्मा हुआ। शुद्ध स्वभाव के सन्मुख दर्शन किये, वह दर्शन-ज्ञान-चारित्र से आत्मा अभेद हुआ।

'संपूर्न सास्वतं पदं' पूर्ण और अविनाशी पद में विराजित झलकता है। भगवान आत्मा ऐसा सम्यग्ज्ञान में झलकता है। शुद्ध अभेदरूप त्रिकाल आनन्द ज्ञानमय, सम्यग्दर्शन में, सम्यग्ज्ञान में, ऐसा झलकता है, ऐसी पर्याय को शुद्ध सम्यग्दर्शन कहते हैं। विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)